

सिद्ध मार्ग



अगर हम सन्तों की बातों को जीवन में उतार सकते हैं, तब हम कह सकते हैं कि उनकी सिखावनी से हमारे जीवन में कितना उद्धार हुआ है।

प्रिय गुरुबन्धु,
सप्रेम जय गुरुदेव!

आशा है पूज्य गुरुदेव की कृपा एवं प्रेरणा से प्रकाशित 'सिद्ध मार्ग' ई-पत्रिका का पहला संस्करण आपको पसंद आया। प्रस्तुत हैं गुरुदेव महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा १९९९ में नीलोखेड़ी में दिये गए प्रवचन के कुछ सम्पादित अंश।

अक्सर लोग मुझसे एक प्रश्न बार-बार पूछते हैं कि जब इतने वर्षों से हमारे देश में धर्म रहा है, तो हम अपने जीवन में प्रगति क्यों नहीं कर पाते? क्यों ऐसा नहीं मानते कि जीवन में कुछ हुआ है? सर्व प्रथम समस्या यह है कि हम धर्मस्थान पर जाते हैं, धर्म के लिए एकत्रित होते हैं, परन्तु अपने जीवन में धर्म की बातों पर आचरण कम करते हैं। अगर हम सन्तों की व शास्त्रों में लिखी बातों को अपने जीवन में यथाशक्ति उतार सकते हैं, तब वास्तव में हम कह सकते हैं कि उनकी सिखावनी से हमारे जीवन में कितना उद्धार हुआ है।

जैसे डॉक्टर की दवाई शारीरिक बीमारियों को ठीक कर देती है वैसे ही सन्तों की वाणी, सन्तों की दवाई हमारी मानसिक, कई जन्मों की बीमारियों को मिटा देती है।

जैसे डॉक्टर जो दवाई हमें देता है, उसको हम पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से लेते हैं। हमें दवाई के बारे में ज्ञान नहीं, समझ नहीं परन्तु हम विश्वास करते हैं कि डॉक्टर ने ठीक ही दिया है और उसकी दवाई से हमारी बीमारी दूर हो जाती है। अगर हम दवाई नहीं लेते तो हमारी बीमारी ठीक नहीं होती। वैसे ही शास्त्र और सन्त जो बातें हमें बताते हैं, यदि हम उन्हें भी उसी श्रद्धा भाव से लें, तो जैसे डॉक्टर की दवाई शारीरिक बीमारियों को ठीक कर देती है वैसे ही सन्तों की वाणी, सन्तों की दवाई हमारी मानसिक बीमारियों, कई जन्मों की बीमारियों को मिटा देती है।

डॉक्टर जब दवाई देता है तो कहता है कि पाँच दिन लेना, दस दिन लेना, बीस दिन लेना, फिर पुनः आकर बताना कितना ठीक हुआ है। वैसे ही हम भी पुनः पुनः सत्सङ्ग में जाते हैं। सत्सङ्ग में जाने का उद्देश्य यही होता है कि एक दूसरे से मिलते हैं तो पता चलता है कि अपने

जीवन में हम कितना आगे बढ़े हैं, कितनी प्रगति की है या हम कहाँ जा रहे हैं? क्योंकि सन्तों की बातों में श्रद्धा न हो तो प्रगति होना तो असम्भव है। फिर हम कैसे कह सकते हैं कि कुछ हो नहीं रहा।

गीता में भी भगवान् कहते हैं, 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्', कि कौन ज्ञान प्राप्त करने की लायकी रखता है- जिसमें श्रद्धा हो, पूर्ण श्रद्धा। यदि सन्त कहता है कि तुम ब्रह्म हो, तुम ही परमात्मा हो, तो इस बात को हम पूर्ण श्रद्धा से, पूर्ण विश्वास के साथ मान लें और फिर उनकी बताई हुई प्रक्रियाओं को हम अपने जीवन में करें तो जो उन्होंने हमें बताया है, वास्तव में उसी परमात्मा का दर्शन हम अपने जीवन में कर सकते हैं।

हमारे यहाँ स्वामी विवेकानन्द जी हुए-श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य, जिन्होंने सर्वप्रथम पूरे विश्व में घूमकर अपने शास्त्रों की, उपनिषदों की बातें पूरे विश्व

जिस तत्त्व का
ज्ञान हमारे
ऋषि-मुनियों ने
हमें दिया है
उसको जितने
अधिक अंश में
हम अपने
जीवन में
अपनायेंगे,
उतने ही अंश में
हम सुखी रहेंगे।

में सुनाई। पूरे विश्व में सुना कर जब वह पुनः भारत लौट कर आये तब वह विभिन्न स्थानों पर गये जहाँ लोगों ने उनका भव्य स्वागत किया क्योंकि उन्होंने हमारे देश का तत्त्व-ज्ञान विदेशों में जाकर ऐसे समझाया कि वे लोग जाग गये। तब स्वामी विवेकानन्द ने अपने लोगों से कहा, 'मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि हमारा जो आध्यात्मिक ज्ञान है उसको आप कभी न छोड़ें, उसको आप कभी न भूलें, क्योंकि यदि आप उसे भूल जायेंगे तो दो तीन पीढ़ियों में ही आपका नाश होने की पूरी सम्भावना है।'

जिस तत्त्व का ज्ञान हमारे ऋषि-मुनियों ने हमें दिया है, जो मैं मानता हूँ, आज भी जीवित है, उसको जितने अधिक अंश में हम अपने जीवन में अपनायेंगे, उतने ही अंश में हम सुखी रहेंगे। आजकल जहाँ भी जाता हूँ लोग कहते हैं ये समस्या है, वो समस्या है- कभी बहू से समस्या, कभी बेटे से समस्या है, कभी पोता-पोती

से। जिस किसी से पूछो तो उसे ऐसा लगता है कि उसी को समस्याएँ हैं और किसी को तो समस्या है ही नहीं। परन्तु यदि आप सब के पास जाएँ तो पाएँगे कि सभी को समस्याएँ हैं।

आज कई कारणों से हम अपने जीवन में समस्याएँ पाते हैं। सर्वप्रथम, जिस संसार को हमारा शास्त्र मिथ्या कहता है, उसको आज हम सत्य मानने लगे हैं। वे कहते हैं कि यह संसार है, परन्तु वास्तव में है नहीं। उसे हम सत्य मानते हैं, इसलिए हम दुखी होते हैं। यदि हम अपने पूर्वजों को देखें तो संसार में वे भी रहे, जो कर्तव्य, जीवन धर्म का पालन हमने किया, उन्होंने भी किया। पर वे जानते थे कि मैं थोड़े समय के लिए इस जीवन में हूँ। मुझे कर्म करना है लेकिन मुझे आगे का भी सोचना है। आगे- यानि जब मैं इस शरीर को त्याग कर जाऊँगा तब जो पूंजी मेरे साथ जायेगी उसके बारे में भी मुझे विचार करना है।

जिस परमात्मा
का दर्शन,
जिसका ज्ञान
हम चाहते हैं,
उसके लिए
सर्व प्रथम इस
देह, इस शरीर
की शुद्धि
करनी है।

इस संसार में रहते हुए भी वे अपने जीवन में ऐसे कर्म करते थे कि उसका आगे क्या फल होगा, कैसा होगा, इसका विचार उन्हें सदा रहता था। परन्तु आज हम अभी का सोचते हैं। इसी जीवन का सोचते हैं, आगे का हम सोचते नहीं। इसी कारण हमारे आगे समस्याएँ खड़ी हैं।

हम सीमित दृष्टि से जीवन के बारे में विचार करते हैं, और हमारे पूर्वज विशाल दृष्टि से जीवन का विचार करते थे। वे यह सोचते थे कि यदि मैं कुछ करता हूँ तो आगे मेरे घरवाले भी उसको करेंगे और अगर पता लग गया तो शायद मेरे गाँव वाले भी करेंगे। इसलिए अगर मैं ना करूँ तो अच्छा होगा क्योंकि फिर मुझे पाप नहीं लगेगा, ना मेरे घरवालों को और ना मेरे गाँववालों को। कहने का मतलब है कि उनकी इतनी विशाल दृष्टि थी।

आप सोचेंगे कि इस सबका आध्यात्मिक सत्सङ्ग से क्या लेना देना? आप ऐसे सोचें कि यदि एक मकान की दीवारें मजबूत नहीं हैं तो वह मकान रहने के लिए एक अच्छा स्थान नहीं बनता। जब हमारा यह शरीर, जो परमात्मा का मकान है, परमात्मा का घर है, वही मकान रहने लायक नहीं तो हम उस परमात्मा का आवाहन उस मकान में कैसे करेंगे? जिस परमात्मा का दर्शन, जिसका ज्ञान हम चाहते हैं, उसके लिए सर्व प्रथम इस देह, इस शरीर की शुद्धि करनी है।

परमात्मा तो सर्वत्र है, हमारा शास्त्र तो यही कहता है 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम्।' उसके पैर, उसके सिर, उसके कान, उसकी आँख सर्वत्र हैं। हम सबकी आँखों से परमात्मा देखता है, सबके कानों से वह सुनता है यह दृष्टि, यह ज्ञान हमारे पास नहीं है, इसलिए हम साधना करते हैं। वह दृष्टि कब आयेगी,

सन्त जन हम
पर कृपा तो
अवश्य ही
करते हैं, परन्तु
उस कृपा को
पाकर, हम
उसका क्या
करें, कैसे
उसका
सदुपयोग करें,
इस पर हमें
विचार करना
है।

कैसे आयेगी उसके लिए हम प्रयास करते हैं। तो सन्त जन हम पर कृपा तो अवश्य ही करते हैं, परन्तु उस कृपा को पाकर, हम उसका क्या करें, कैसे उसका सदुपयोग करें, इस पर हमें विचार करना है।

उदाहरण के लिए अगर किसी धनी आदमी के पास बहुत पैसा है, जिसे वह अपने पुत्र के लिए छोड़ जाता है कि 'मैंने तो बहुत कष्ट करके इस धन को कमाया है, अब इस धन से तुम अपने जीवन को अच्छी तरह से चलाओ और ऐसे चलाओ कि आगे तुम्हारी पीढ़ियाँ भी चलती रहें।' परन्तु यदि बेटा ऐसा हो जो कुछ स्वकष्ट नहीं करता, सारे का सारा धन खर्च कर बैठता है, उड़ा देता है तब ना तो स्वयं उसके लिए वह धन रहता है और ना आगे की पीढ़ियों के लिए।

परन्तु यदि वह इस धन का सदुपयोग करता, इस धन को धन्धे में लगाता, तो उसका जीवन भी सुख से

बीतता और आगे आने वालों का भी।

वैसे ही सन्त की कृपा हम पर बरसती है। कृपा का कोई नाम नहीं होता क्योंकि वह तो असीमित है, जैसे सूर्य का प्रकाश कितना है यह कौन बता सकता है? विज्ञान प्रयास करता है कि सूर्य के प्रकाश को नापें, परन्तु नाप नहीं सकता। वैसे ही सन्त की कृपा हमेशा बरसती है। उस कृपा का हम अपने जीवन में कैसे सदुपयोग करें जिससे वह सतत बढ़ती रहे?

सर्वप्रथम अपनी इस देह में परमात्मा को रखने के लिए हमें स्थान चाहिए। हमारे पूज्य बाबाजी एक कहानी कहा करते थे। एक सन्त किसी सेठ के यहाँ भिक्षा लेने गये। सन्त के पास एक छोटा सा कमंडल था, जिसमें वह भिक्षा लिया करते थे। सेठ के पास बढ़िया बढ़िया पकवान बने हुए थे। सेठ ने जब सन्त का भिक्षा-पात्र देखा तो कहा, 'महाराज, पहले आप इसकी अच्छी तरह सफाई कर लीजिए फिर मैं अपना भोजन इसमें

**नाम-संकीर्तन-
जप द्वारा हम
अपने शारीरिक
मानसिक एवं
वाचिक तीनों
की शुद्धि कर
सकते हैं।
भगवन्त-नाम
की ऐसी
महिमा है, ऐसा
प्रताप है।**

डालूँगा।' सन्त एक बार पानी से धो कर उसे ले आये। तब सेठ ने कहा, 'नहीं, नहीं, आप इसे अच्छी तरह से धोइये तभी मैं इसमें अपना बढ़िया भोजन डालूँगा।' दो, तीन बार ऐसा हुआ। तब सेठ को लगा कि अब पात्र स्वच्छ है, तो उसने उसमें भिक्षा दी और सन्त ने उसे खाया। फिर सेठ ने कहा कि महाराज, आप आये हैं तो मुझ पर कुछ कृपा कर दो, मुझे भी ज्ञान दो। क्योंकि हम भिक्षा तो देते हैं परन्तु यह आशा भी रखते हैं कि सन्त कुछ ज्ञान, कुछ सद्बुद्धि दे। मुफ्त में ना हम भिक्षा देते हैं और ना ही सन्त मुफ्त में कुछ चाहते हैं।

तो सन्त ने कहा, 'सेठ जी जैसे मेरा भिक्षा का पात्र आपके बढ़िया पकवानों के लिए स्वच्छ नहीं था, वैसे ही जो ज्ञान आप पाना चाहते हो, उसको पाने के लिए आपको अपने पात्र को निर्मल बनाना पड़ेगा, तभी वह ज्ञान, वह कृपा आपके अन्तर में जाएगी- अच्छी तरह से वहाँ बैठ जाएगी।' जब कभी हम ऊपर-ऊपर से

कोई वस्तु डालते हैं तब उसके बाहर गिरने का भय भी रहता है।

तो फिर वही प्रश्न उठता है कि इस देह को हम निर्मल कैसे करें, स्वच्छ कैसे करें जिससे गुरु की कृपा को हम प्राप्त कर सकें? सर्व प्रथम है भगवान का नाम जप, यह एक उत्तम प्रक्रिया है। नहाते समय हम मल-मल कर साबुन लगाते हैं कि मेरी त्वचा निर्मल हो जाए। वैसे ही नाम-संकीर्तन-जप द्वारा-भले ही जोर से बोले हों जैसे हमने अभी किया था व अन्तर में मानसिक रूप से जिसे हम जप कहते हैं- इसके द्वारा हम शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक तीनों की शुद्धि कर सकते हैं। भगवन्त-नाम की ऐसी महिमा है, ऐसा प्रताप है।

आज हमारा मन भिन्न भिन्न विचारों से, चिन्ताओं से भरा हुआ है, संसार की बातों से शान्ति कैसे पाऊँ?

टी.वी.के आगे बैठने से तो शान्ति प्राप्त नहीं होगी, दारू पीने से भी शान्ति प्राप्त नहीं होगी। और भी जो हमारा व्यवहार है उससे तो शान्ति प्राप्त नहीं होगी, अपितु चिन्ता और बढ़ेगी।

भगवत्-नाम-
चिन्तन एक
ऐसी साधना है
जिसे करते-
करते हमारा मन
शान्त हो जाता
है।

परन्तु भगवत्-नाम-चिन्तन एक ऐसी साधना है जिसे करते-करते हमारा मन शान्त हो जाता है। भले ही कभी ऐसा लगता है कि मैं इतना जाप करता हूँ परन्तु इसका मुझे कोई लाभ नहीं हो रहा, या मेरे जीवन की अड़चनें तो कम नहीं हो रहीं पर जैसा हमारे अवधूत भगवान नित्यानन्द जी कहते थे, जो भक्ति तुम करते हो और तुम्हारे सांसारिक कर्मों का क्या लेना-देना। भक्ति तो हम अपने लिए करते हैं कि मैं उस परमात्मा तक पहुँच जाऊँ और संसार का जो प्रारब्ध है वो तो हमारे पूर्व कर्मों का फल है।

यदि मैं यह सोचूँ कि मैं भक्ति करूँ और भगवान मेरे

कर्मों को कुछ कम कर देंगे- तो जब सन्त जन के जीवन में कुछ फेर हुआ नहीं तो हम तो संसारी हैं। हम यह कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि मैं थोड़ी सी भक्ति करूँ और भगवान मेरे प्रारब्ध को बदल दें। सन्त- जिन्होंने अपना पूरा जीवन भगवत्-चिन्तन में लगाया है- वे भी स्वयं अपना प्रारब्ध भोगते हैं। परन्तु उनकी दृष्टि बदल जाती है कि ये मेरे ही किए हुए कर्मों का फल है, इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं, बस इन्हें भोग लेना है। जो कुछ होना है हो लेने दो - मुझे अपने मन को उस परमात्मा में ही लीन करना है। अपने जीवन का जो कर्म है, उसे करें और मन परमात्मा में लगा रहे।

अभी तो प्रायः संसार में रहते हुए हम पूर्ण रूप से संसार में डूबे रहते हैं, परन्तु सन्त जन हमें ज्ञान देते हैं कि जो परम तत्त्व है उस पर मन को लगाए रखें। सन्त जन इस इच्छा से रहते हैं कि औरों का भला हो, जो भगवत्-अवस्था उन्होंने प्राप्त की है उसी ज्ञान, उसी अनुभव

अपना जो भी
कर्म-धर्म है,
उसे करते हुए,
मन को सदा ही
परमात्मा के
साथ जुड़ा रखें।

की प्रत्यक्ष अनुभूति वे औरों को देना चाहते हैं। इससे उनका कुछ घटता नहीं, उनका कुछ बढ़ता नहीं। उन्हें कुछ होता नहीं, बस इतना ही कि उन्होंने औरों का हित किया।

स्वार्थ पापों की जड़ है। पर स्वार्थ वश भी यदि हम सत्कर्म करेंगे तो अपनी भलाई तो होगी ही, औरों की भी भलाई होगी। आप इस पर विचार करें।

लोग कहते हैं, वह ऐसा कर्म करता है तो मैं भी वैसा ही करूँ और आस-पास वाले सोचते हैं कि मैं भी वैसा ही करूँ। पशु और मनुष्य में क्या भिन्नता है? हम विचार करें। सुन्दरदास जी कहते हैं कि सींग और पूँछ नहीं बाकी हम उन जैसे ही हैं। यदि हम उस परम तत्त्व की ओर बढ़ते हैं तब हम पशु से भिन्न हैं। नहीं तो जैसे एक पशु आगे चलता है, बाकी उसके पीछे चल पड़ते हैं, वैसे ही मनुष्य भी चलता है। आप कहोगे कि यह बात

असत्य है। पर मैंने देखा है भारत में हो या योरोप में, मनुष्य एक जैसा ही है।

गीता में भगवान् कहते हैं 'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यति।' वो आत्मा जो तेरे अन्तर में निवास करती है- यानि परमात्मा का अंश जिसे हम जीव कहते हैं, शरीर के कर्मों से उसका कोई लेना देना नहीं। शरीर के लिए हुए कर्मों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सन्त जन ने अपना मन उस परमात्मा में लगा दिया है और उन्हें इस संसार से कुछ लेना देना नहीं। हमें भी चाहिए कि अपना जो भी कर्म-धर्म है, उसे करते हुए, मन को सदा ही परमात्मा के साथ जुड़ा रखें।

आप पूछोगे कि यह कैसे सम्भव है? मैं संसार में रहूँ, जो सब कुछ संसार में चलता है उसके साथ चलूँ और मन परमात्मा में लगाए रखूँ? यह भी अभ्यास की बात है। उदाहारण के लिए, जब कोई गाड़ी चलाना

यदि आज हम अपने आप को कुछ सीमा तक सफल पाते हैं तो इसका कारण है हमारा आध्यात्मिक धर्म, जिसके कारण आज भी हमारे मन में आन्तरिक शान्ति है।

सीखता है तो उसे भी लगता है- मुझे स्टीडिंग भी पकड़ना है, क्लच, ब्रेक और ऐक्सलेटर तीन चीजें हैं, गियर भी है, इन सब पर ध्यान देना है। यदि कोई साइकिल चलाना सीखता है तो वह भी लुढ़क जाता है। पैदल भी चलता है तो शुरु-शुरु में आदमी को लगता है- सीधे अपनी राह पर चलना है, किसी से टकरा न जाऊँ, कहीं गिर पड़ा तो अस्पताल जाना पड़ेगा। पर जब अभ्यास हो जाता है, तब सरलता से वह यह सब कर सकता है।

वैसे ही जब सर्वप्रथम हम परमात्मा के मार्ग पर चलते हैं तब हम सोचते हैं कि मन को उस परमात्मा में लगाये रखना है और साथ-साथ जीवन के कर्मों को भी करते रहना है- यह कैसे हो सकता है? अभ्यास द्वारा यह सम्भव हो जाता है।

जैसा स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा, यदि आज हम

अपने आप को कुछ सीमा तक सफल पाते हैं तो इसका कारण है हमारा आध्यात्मिक धर्म, जिसके कारण आज भी हमारे मन में आन्तरिक शान्ति है। अपनी इस निष्ठा को हम बनाये रखें और आगे बढ़ाएँ तभी वास्तविक प्रगति कर पायेंगे।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु

सिद्ध मार्ग

शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है। जून २०१०, संस्करण- २



नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तम् आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतीनेतरेषाम् ॥

THE SELF IS ETERNAL AMID THE TRANSIENT;
PURE CONSCIOUSNESS AMID LIMITED CONSCIOUSNESS;
ONE AMONG MANY;
AND THE FULFILLER OF ALL DESIRES.
ONLY THOSE STEADFAST ONES WHO REALIZE HIM AS SEATED
IN THE SELF EXPERIENCE ETERNAL PEACE.
THIS PEACE DOES NOT BELONG TO ANYONE ELSE.
– UPANIṢAD MANTRAS, VERSE 5